Rural Studies (RM&D)
Patna University
Semester-I

Indian Rural Society & Rural Administration

Course/ Paper Code:-CC-1 Unit-5- Panchayati Raj

(E-content)

Dr. Shashi Gupta
Assistant Professor (Guest Faculty)
P.G. Department of Rural Studies (RM&D)
Patna University
Mobile No.:9472240600
Email: drsgupta01@gmail.com

पंचायती राज

पंचायती राज की अवधारणा

पंचायतें वे महत्वपूर्ण संस्था है, जिनके माध्यम से भारत जैसे विशाल और विविधताओं वाले देश में प्रशासन आम लोगों तक पहुंचता है तथा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय लोगों के स्थानीय अधिकारी द्वारा ही की जाती है। यही सच्चे लोकतंत्र और पंचायती राज का सारतत्व है। शाब्दिक दृष्टि से पंचायती राज शब्द हिंदी भाषा के दो शब्दों पंचायत और राज्य से मिलकर बना है।

वैदिक काल में पंचायती राज

वैदिक काल के आरंभ में ग्राम का प्रबन्ध गाँव के मुखिया द्वारा होता था, जिसे ग्रामिणी कहा जाता था। गाँव की चौपाल पर इस सभा के सदस्य बैठकर चर्चा करते थे। वैदिक काल में सभा होती थी, जिसमें प्रत्येक नागरिक भाग लेता था, जहां राजा भी डरता हुआ जाता था कि कहीं उसे पदच्युत या मुअत्तिल न कर दिया जाए।

महाकाव्य काल में में पंचायती राज

उत्तर वैदिक काल में रामायण एवं महाभारत में भी पंचायतों की महत्वपूर्ण स्थिति देखने को मिलती है। ग्राम के शासक को ग्रामीणी की जगह ग्रामिक कहा जाने लगा। उत्तर वैदिक काल में राष्ट्रीय जीवन इन विभिन्न स्वायत्त शासनों में अपने आपको अभिव्यक्त करता है, ऐसा करने में वास्तव में उन्होंने वैदिक परंपराओं, सामुदायिक संस्थाओं को आगे बढ़ाया। इस काल में ग्राम प्रमुख को ग्रामणी अथवा महतर के नाम से जाना जाता था।

बौद्ध काल में पंचायतों के बारे में जातक कथाओं से पता चलता है कि ग्राम के शासक को ग्राम भोजक कहा जाता था। सभा ग्राम संगठन का एक मनोरंजक और महत्वपूर्ण अंग थी, जिसमें ग्राम के वृद्ध व्यक्ति बैठते थे, जो कुटुंब के सबसे बड़े-बूढ़े हुआ करते थे। उस समय ग्राम सभा के मुख्य कार्य थे - न्याय करना, गांव की आंतरिक सुरक्षा, मकान, घाट, मंदिर, तालाब, कुएँ बनवाना, कर वसूल करना तथा शिक्षा आदि।

मौर्य काल वह गुप्त काल में पंचायती राज

कौटिल्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थशास्त्र'' में ग्राम पंचायतों की स्थानीय शासन एवं न्याय व्यवस्था में भूमिका का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "स्थानीय विवादों का निर्णय ग्राम वृद्धों एवं सामंतों द्वारा किया जाता था। यदि ग्राम वृद्ध या सामंत किसी विवादास्पद विषय पर निर्णय लेने में मतभेद रखते तो उस स्थान की जनता की अनुमति से वहां के धार्मिक पुरुष उस विषय पर निर्णय से अथवा मध्यस्थ को नियत कराकर उससे निर्णय करवाया जा सकता था। गुप्तकालीन व्यवस्था में भी ग्राम पंचायत का

अत्यधिक महत्व था। उस समय य|पि राजवंशी प्रणाली थी, लेकिन शासन का विकेंद्रीकरण विभिन्न स्तरों पर किया गया था। ग्रामीण मामलों के प्रबंध हेतु एक पद सोपानिक पंचायती व्यवस्था वि|मान थी। गुप्तकाल के बाद हूण, यशोधर्मन, मैत्रिक इत्यादि वंशों का शासन रहा। उन्होंने प्रशासनिक व्यवस्था में विशेष परिवर्तन नहीं किए। हर्षवर्धन के समय में ग्राम के मुखिया का चुनाव होता था। ग्राम की प्रशासनिक गतिविधियों तथा अपराधिक स्थितियों के निराकरण के लिए अष्टकुल अधिकरण नामक समिति अस्तित्व में थी। ग्राम के प्रभारी अधिकारी को ग्राम अक्षपटलक कहा जाता था।

पंचायती व्यवस्था का सर्वथा परिष्कृत स्वर्णिक स्वरूप दक्षिण भारत के विशेषतया चोल शासन में दिखाई देता है। चोल अभिलेखों में स्थानीय स्वशासन की मौलिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है। कोट्टम (गांव) से लेकर मंडल (प्रान्त) तक स्वशासन की संस्थाएं थी, जो प्रशासन का कार्य देखती थीं। वलनाड़ (बड़े प्रदेश) की सभा को नगस्तार, नाडु (जिले) में कार्यरत संस्था नाट्टर कहलाती थी।

मुगलकालीन व्यवस्था में पंचाचती राज

मुस्लिम काल में, मुस्लिम राजाओं ने पंचायत व्यवस्था में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप किया। laiw.AZ मुगल प्रान्त, अनेक सरकारों तथा जिलों में बंटा हुआ था। छोटी शासन इकाई परगना कहलाती थी। परगने गांवों में विभक्त थे। गांवों को अपने मामलों में काफी स्वतंत्रता मिली हुई थी। अकबर के शासन काल में पंचायती राज संस्थाओं को काफी हद तक नैतिक एवं प्रशासनिक सहयोग प्राप्त था। इस काल में सामान्यत: काजी, मीर, आदिल आदि न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति के उपरान्त भी ग्राम पंचायतों की भूमिका महत्वपूर्ण बनी रही। मराठा काल के अनेक दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि शिवाजी राजाराम और साहू आदि के पास जो मामले सीधे लाए जाते थे, उन्हें वे स्वयं न सुनकर ग्राम पंचायत के पास भेज दिया करते थे।

ब्रिटिश काल में पंचायती राज

अंग्रेजों का भारत में उद्देश्य शोषण करना था। अतः पंचायतों की व्यवस्था में इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए परिवर्तन किया गया। शासन संचालन के लिए अधिकतर कर्मचारियों की नियुक्ति की गई जिसके कारण पंचायत के अधिकार अंग्रेजों के हाथों में आना प्रारंभ हो गए। लॉर्ड कर्जन की केंद्रीयकरण की नीति के फलस्वरुप इन संस्थाओं पर सरकारी वर्चस्व स्थापित हो गया। पंचायतों पर प्रथम आक्रमण वर्ष 1773 में प्रारंभ हुआ, जब वारेन हेस्टिंग्स के शासनकाल में रेग्युलेशन एक्ट द्वारा पंचायतों के अधिकार एक के बाद एक छीने जाने लगे। गांव से मालगुजारी एकत्र करने के लिए जमींदार नियुक्त हुए, जो व्यक्तिगत रूप से लगान वसूल करने लगे। ब्रिटिश शासन काल में व्यापक पैमाने पर दीवानी एवं दंड न्यायालयों की स्थापना हुई, जिनका क्षेत्राधिकार गांवों तक भी प्रशस्त था। इन न्यायालयों में अधिकांश मामलों की सुनवाई होने के परिणामस्वरुप धीरे-धीरे अपने प्राधिकार से शून्य होती गई । वर्ष 1821 में एल्फिन स्टोन न ग्राम पंचायतों के महत्व को स्वीकार करते हुए उनकी शक्तियों को सीमित

करने को अनुचित ठहराया। वर्ष 1857 में ग्रामीण स्वायत्तशासी निकायों को कुछ महत्व प्रदान करते हुए कुछ राज्यों में जिला कोषों की स्थापना की गई तथा ग्रामीण प्रशासन को भू –राजस्व, शिक्षा एवं पथ कर लगाने के अधिकार प्रदान किए गये। वर्ष 1882 में लॉर्ड रिपन ने ग्रामीण क्षेत्रों में बोर्ड अथवा मंडलों की स्थापना का सुझाव दिया। वर्ष 1884 में चेन्नई एंव बंगाल में यूनियन पंचायतों के गठन के संबंध में कार्रवाई एक उल्लेखनीय प्रयास था ।

19वीं सदी के **mŸkjk}Z** में दादाभाई नौरोजी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल, रवींद्रनाथ ठाकुर आदि नेताओं ने ग्रामीण जनता को उसकी प्राचीन ग्राम पंचायतों तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण समाज व्यवस्था की याद दिलाई। वर्ष 1907 में अंग्रेजों ने विकेंद्रीकरण के लिए शाही आयोग गठित किया । वह देशभर में पंचायतों की स्थापना का सुझाव दिया । 1910 इलाहाबाद में आयोजित अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के दौरान ब्रिटिश सरकार के समक्ष ग्राम पंचायतों की स्थापना की मांग रखी गई । वर्ष 1915 की शासकीय रिपोर्ट में पंचायतों के विषय में कहा गया कि पंचायतों को निश्चित कर लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए । लेकिन इस पर प्रांतीय सरकार का नियंत्रण रखना चाहिए । इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कर वसूली में पंचायत इतनी मग्न ना हो जाए कि वे अन्य कार्यों में शिथिल हो जाए । वर्ष 1919 में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड के सुझावों के कारण गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के पास होने के बाद पंचायतों की ओर कुछ और ध्यान दिया गया । इसके लागू होने का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि पंचायतों का विषय केंद्रीय सरकार का न होकर प्रांतीय सरकारों का विषय बन गया ।

वर्ष 1920 में मद्रास प्रांत में पंचायत कानून बना । इसमें स्थानीय संस्थाओं और पंचायतों को अधिकार दिए गए । 1922 में गया में हुए कांग्रेस के सम्मेलन में देशबंधु चितरंजन दास ने अपनी पांच सूत्रीय योजना प्रस्तुत की थी । इसमें पंचायतों को भारतीय शासन के पुनर्निर्माण का आधार बनाया गया । इन पर ही उच्च स्तर की सरकार आधारित करने की तथा उन्हें अवशिष्ट शक्तियां देने की कल्पना की गई थी । 1930 से पंचायतों के अधिकारों में फिर कटौती की जाने लगी ।

वर्ष 1935 में प्रांतों को स्वाय**Ùk**ता मिली । ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों का निर्माण होने लगा |वर्ष 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट में जनता की शासन की कई मांगे मान ली गई थी । परंतु पंचायतों की दशा में कोई खास सुधार नहीं हुआ । 1942 के विद्रोही दौर में सारे अधिकार व्यवहार्यत: शासकीय विभागीय अधिकारियों को सौंप दिए गए । यद्यपि 1941 में पंचायतों के लिए अलग से विधान बनाने का एक दस्तावेज तैयार हुआ था । 1946 में जाकर ग्राम पंचायत अधिनियम बना ।

समय-समय पर विभिन्न प्रांतों के लिए ग्राम पंचायत संबंधी जो अधिनियम पारित किए गए थे वे इस प्रकार है - बंगाल में स्थानीय अधिनियम,1919, मद्रास में स्थानीय सरकार अधिनियम, 1920, बम्बई ग्राम पंचायत अधिनियम, 1920, उत्तर प्रदेश पंचायत एक्ट 1920, बिहार सरकार अधिनियम,1920, सेन्ट्रल प्रोविन्स पंचायत अधिनियम,1920, पंजाब पंचायत अधिनियम,1922, आसम स्वसरकार अधिनियम अधिनियम,1925, मैसुर ग्राम पंचायत अधिनियम,1928।

स्वतंत्रता के बाद पंचायती राज की प्रगति

लोकतंत्र की सबसे छोटी इकाई पंचायत की स्थापना के बारे में जो सदियों से भारत के शासक संचालन का आधार रही थी, संविधान का प्रारूप गांधी जी को दिखाया गया तो गांधीजी ने उसे देखकर लौटा दिया और कहा, इसमें तो पंचायतों की व्यवस्था है ही नहीं - यदि भारत को नष्ट नहीं होना है तो हमें सबसे निचले स्तर से काम आरंभ करना होगा, अन्यथा उच्च तथा मध्य तक का तंत्र लड़खड़ा कर गिर जाएगा । स्वराज का अर्थ कुछ लोगों के हाथ में क्षमता नहीं है बल्कि बहुमत के हाथ में जो शासक को नियंत्रित कर सके, अर्थात विकेंद्रीकरण ही भारत के तंत्र का समाधान है ।

इसके फलस्वरूप संविधान सभा का इस ओर ध्यान गया । राज्य के नीति -निर्देशक तत्वों में पंचायत का स्थान दिया गया । संविधान के अनुच्छेद 40 में उल्लेख किया गया कि राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा, जो उनको स्वायŸk शासन इकाई के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो । संविधान में ग्राम पंचायत को राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में स्थान देकर उन्हें ऐच्छिक स्थिति में रखा गया । पंचायतों को सिर्फ नागरिक कार्य सौंपे गए ।

वर्ष 1957 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए जन सहभागिता की समस्या के समाधान के संबंध में अध्ययन करके सुझाव देने के लिए बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया । 2 अक्टूबर,1959 को बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों की क्रियान्विति में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का उद्घाटन करते हुए इसे नए भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक कदम बताया ।

इसके बाद आंध्र प्रदेश में पहली नवम्बर,1959 को इस व्यवस्था को लागू किया तथा अगले 3 - 4 वर्षों में संपूर्ण देश में ग्राम पंचायतों की स्थापना हो गई । अधिकांश राज्यों ने बलवंत राय मेहता की सिफारिशों के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था को त्रिस्तरीय रखा अथातz पहला ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, दुसरा प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद ।

64वां संविधान संशोधन विधेयक, 1989

15 मई, 1989 में संसद में 64वां.सविधान संशोधन लाया गया । इस विधेयक के प्रमुख प्रावधान निम्न थे -पंचायती राज संस्थाओं का ढांचा त्रिस्तरीय होगा | ग्राम स्तर, ब्लॉक स्तर तथा जिला स्तर । छोटे राज्य जिनकी संख्या 20 लाख से कम है वे f}स्तरीय ढांचा भी अपना सकते हैं । पंचायतों में महिलाओं को 30% आरक्षण प्राप्त होगा । (वर्तमान में बिहार में 50 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है) । यह आरक्षण अनुसूचित जाति एवं जनजाति को प्राप्त आरक्षण के अतिरिक्त होगा, पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष का होगा, यदि किसी पंचायत का निर्धारित अवधि से पूर्व विघटन हो जाता है तो अधिकतम 6 माह के भीतर

इनका नया चुनाव करना अनिवार्य होगा, पंचायती राज संस्थाओं को अपने क्षेत्र के अंतर्गत विकास की योजना का निर्माण करने का अधिकार होगा आदि ।

73वां संविधान संशोधन (1992)

16 दिसंबर, 1991 को तात्कालिक प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हा सरकार के द्वारा 72वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया । यह विधेयक 64वें संशोधन विधेयक की ही संशोधित प्रति थी । लोकसभा में 72वें विधेयक की समीक्षा हेतु संसद सदस्यों की एक संयुक्त प्रवर समिति का गठन किया गया । नाथूराम मिर्धा की अध्यक्षता में गठित इस समिति में विभिन्न राज्यों एंव इलाकों के प्रतिनिधि सदस्य थे । 22 दिसंबर को लोकसभा एवं अगले दिन राज्यसभा में 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में पारित किया गया । 17 राज्यों के अनुमोदन के बाद 24 अप्रैल, 1993 यह अधिनिय संपूर्ण देश में लागू कर दिया गया । इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग, भाग 9 संविधान में जोड़ा गया, जिसकी शीर्षक 'पंचायत' है । इसके द्वारा अनुच्छेद 243 में पंचायतों से संबंधित प्रावधान किए गए हैं , जिसमें 15 उप-अनुच्छेद है ।

संविधान (73वां) संशोधन अधिनियम, 1992 के पारित होने से देश के संघीय लोकतांत्रिक ढांचे में एक नए युग का सूत्रपात हुआ और पंचायती राज संस्थाओं को सांवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ । इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है - ग्राम सभा एक ऐसा निकाय होगा, जिसमें ग्राम स्तर पर पंचायत क्षेत्र में मतदाताओं के रूप में पंजीकृत सभी व्यक्ति शामिल होंगे । ग्राम सभा राज्य विधान मंडल द्वारा निर्धारित शक्तियों का प्रयोग तथा कार्यों को संपन्न करेगी, 20 लाख से अधिक जनसंख्या वाले सभी राज्यों के लिए पंचायती राज की त्रि- स्तरीय प्रणाली, प्रत्येक 5 वर्ष में पंचायतों के नियमित चुनाव, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण और महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण, पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय शक्तियों के संबंध में सिफारिशे करने के लिए वित्त आयोग की स्थापना, पूरे जिले के लिए विकास योजना का मसौदा बनाने के लिए जिला आयोजन समिति का गठन, यह अधिनियम संविधान में अनुच्छेद 243 (जी) द्वारा एक नई ग्यारहवीं सूची जोड़ता है जिसमें 29 विषय है।

भारत में पंचायतों का इतिहास पुराना है। परंतु सही अर्थों में संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के क्रमश: 24 अप्रैल और 1 जून, 1993 को कानून बन जाने पर हमारे यहां मौजूदा पंचायती राज प्रणाली की शुरुआत हुई । 73वें संविधान संशोधन ने मृत प्राय पंचायतों को जीवन प्रदान दिया । संविधानिक दर्जा दिए जाने से उनका अस्तित्व सुरक्षित हो गया । इससे पंचायतों को ना केवल प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुए हैं बल्कि वित्तीय संसाधनों की गारंटी भी प्राप्त हुई, जिससे ग्रामीण विकास में सहायता प्राप्त हो रही है।

भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण

भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवधारणा बन चुकी है । लोकतंत्र का तात्पर्य ऐसी राज्य व्यवस्था से है जहां शासन व्यवस्था किसी व्यक्ति विशेष या कुछ व्यक्तियों के हाथ में ना होकर जनता के हाथ में हो । लोकतंत्र में जनता ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन व्यवस्था में भाग लेती हैं । जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में शासन की बागडोर होती है । विकेंद्रीकरण का अभिप्राय शासकीय इकाई की छोटी इकाइयों में विभाजित कर उन्हें कुछ अधिकार तथा दायित्व सौंपने से है । ये अधिकार और दायित्व इस दृष्टि से सीमित होते हैं कि प्रत्येक नीचे के स्तर वाली संस्था पर ऊपर के स्तर वाली संस्था नियंत्रण रहता है । इन सभी संस्थाओं पर अन्तिम राज्य सरकार का रहता है । विकेंद्रीकरण में स्थानीय संस्थाओं और इनसे सम्बद्ध व्यक्तियों को अपनी बुद्धि और विवेक को काम में लेने का अवसर दिया जाता है । इन्हें ही अपने क्षेत्र के विकास हेतु योजना बनाने और उसे क्रियान्वित करने का कार्य सौंपा जाता है ।

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का अभिप्राय यह है कि लोकतंत्र के सिद्धांतों के आधार पर विभिन्न संस्थाओं का निर्माण किया जाए और उन्हें प्रशासनिक सत्ता का इस प्रकार से वितरण किया जाए कि जनता को बार बार उसकी अनुभूति हो सके । ग्रामीण समाज में परिवर्तन लाने के व्यापक लक्ष्य को ध्यान में रखकर पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से गतिशील नेतृत्व के विकास पर जोर दिया गया । उम्मीद यह की गई कि नवीन प्रकार का नेतृत्व ग्रामीण समाज में विकास कार्यों को गति प्रदान करने और उसे आधुनिकीकरण की दिशा में आगे बढ़ाने में सक्रिय योगदान दे सकेगा । पंचायती राज के अंतर्गत सत्ता को ग्राम, प्रखण्ड और जिला स्तर पर विभिन्न जनप्रतिनिधियों को सौंपने और उन्हें ही विकास कार्यों का दायित्व संभालने की दृष्टि से ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों और जिला परिषदों का गठन किया गया । पंचायती राज अंतर्गत इसी तीन स्तरीय व्यवस्था के माध्यम से सत्ता का निचले स्तरों पर वितरण किया गया । इसी को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के नाम से पुकारा गया । पंचायती राज का अर्थ स्पष्ट करते हुए 'तृतीय पंचवर्षीय योजना ' में बताया गया कि यह ग्राम, पखण्ड और जिला स्तर पर लोकप्रिय लोकतांत्रिक संस्थाओं का एक ऐसा अंतर संबंधित संग्रह है जिसमें जनता के प्रतिनिधि एवं ग्राम पंचायतें ,पंचायत समितियां और जिला परिषदें और साथ ही सहकारी संगठन सरकार की विभिन्न संस्थाओं के समर्थन व सहायता के आधार पर एक समqह के रूप में मिलकर कार्य करते हैं।

पंचायती राज संगठन तथा कार्य प्रणाली

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और विकास कार्यक्रमों में जनता का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से पंचायती राज व्यवस्था की शुरुआत की गई। पंचायती राज व्यवस्था की तhन सीढ़ियां रही : ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, प्रखंड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद या जिला पंचायत।

पंचायती राज की संरचना –

ग्राम सभा - पंचायती राज अधिनियम में प्राथमिक स्तर पर ग्राम सभा की व्यवस्था की गई हैं। प्रत्येक गांव की सभी व्यस्क नागरिकों से मिलकर बनने वाली सभा को ग्राम सभा का नाम दिया गया हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन की प्रत्यक्ष लोकतंत्रीय संस्था हैं। ग्राम सभा गाँव के स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग करती है और ऐसे कार्यो कॉ करती है जिसे राज्य विधानमंडल विधि बनाकर निश्चित करता है ।

त्रिस्तरीय संरचना : इस अधिनियम में ग्राम सभा के अतिरिक्त, त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं की व्यवस्था की गई है । पंचायती राज व्यवस्था के तीन स्तर है - ग्राम के स्तर पर , प्रखंड के स्तर पर या मध्यवर्ती स्तर पर और जिला स्तर पर । लेकिन जिन राज्यों या संघीय राज्य क्षेत्रों की जनसंख्या 20 लाख से कम है उन्हें स्वयं अपने संबंध में इस बात का निर्णय लेना होता है कि मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत राज संस्था रखी जाए या नहीं ।

चुनाव की विधि : पंचायत स्तर पर सभी ग्राम पंचायतों का चुनाव प्रत्यक्ष और जिला परिषद के अप्रत्यक्ष चुनाव होता है । मध्यवर्ती स्तर की संस्था के अध्यक्ष (प्रमुख) का चुनाव प्रत्यक्ष होगा या अप्रत्यक्ष ' यह बात संबंधित राज्य सरकार द्वारा निश्चित की जाती है ।ग्राम पंचायतों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं । अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की जो संख्या होगी उनमें भी 30% स्थान उन जातियों कि महिलाओं के लिए आरक्षित होगी

सदस्यों की योग्यताएं : पंचायत का सदस्य निर्वाचित होने के लिए निम्न योग्यताएं आवश्यक होंगी :

- नागरिक 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो ,
- वह व्यक्ति विधि के अधीन राज्य विधानमंडल के लिए निर्वाचित होने की योग्यता (आयु के अतिरिक्त अन्य योग्यताएं) रखता हो ।
- यदि वह संबंधित राज्य विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के अधीन पंचायत का सदस्य निर्वाचित होने के योग्य हो ।

कार्यकाल : पंचायत राज संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है । इसके पूर्व भी उनका विघटन किया जा सकता है यदि उस समय प्रवृति किसी विधि के अधीन ऐसा उपबन्ध हो । किसी पंचायत के गठन के लिए चुनाव 5 वर्ष की अवधि के पूर्व और विघटन की तिथि से 6 माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व करा लिया जाता है ।

पंचायतों के निर्वाचन : पंचायतों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार करने और पंचायतों के सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होता है । इस कार्य के लिए राज्य में एक 'राज्य निर्वाचन आयुक्त' की नियुक्ति की जाती है ।

शक्तियां, अधिकार और दायित्व : इस सविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य विधानमंडल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करता है जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाती है। 11वीं अनुसूची में कुल 29 विषयों का उल्लेख है। जिन पर पंचायतों को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की जाती है। कुछ प्रमुख विषय हैं : कृषि एवं कृषि विस्तार, भूमि सुधार, चकबन्दी, लघु सिंचाई, पशुपालन, पेयजल, इंधन, चारा, प्राइमरी और माध्यमिक विद्यालय, परिवार कल्याण, महिला एंव बाल विकास आदि।

वित्त आयोग की नियुक्ति : इस अधिनियम की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि अब प्रत्येक 5 वर्ष बाद राज्य स्तर पर एक 'वित्त आयोग' का गठन होता है। यह वित्त आयोग राज्य सरकार और पंचायती राज संस्थाओं के बीच धन के बंटवारे के संबंध में सिफारिशें करता है। आयोग यह भी तय करता है कि राज्य के संचित कोष से पंचायतों को कितने ध्यान दिया जाए।

प्रशिक प्रशिक्षण की व्यवस्था : सभी राज्यों में पंचायतों के चुनाव के परिणामस्वरुप पंचायत के सभी स्तरों पर चुने हुए प्रतिनिधियों की संख्या करीब 34 लाख है। इनमें से अधिकतर प्रतिनिधि प्रथम बार चुनकर आते हैं, विशेषकर अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं में से। चूँकि संविधान ने ग्राम पंचायतों पर आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों को बनाने एवं क्रियान्वित करने का दायित्व डाला है, अतः चुने हुए प्रतिनिधियों को विशेष दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण लेना होता है। पंचायती राज व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि दायित्वों के निर्वाह के लिए चुने हुए प्रतिनिधियों में कितनी क्षमताएं विकसित की जाती है। इसके लिए समयबद्ध एव व्यवस्थित प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था की जाती है।